2

पठन का बीहड़ यथार्थ

शारदा कुमारी*

छह वर्ष की सारंधा ने अभी कुछ माह पहले विद्यालयी शिक्षा की दुनिया में कदम रखा है। वह घूमने की बहुत शौकीन है पर अपना यह शौक पूरा नहीं कर पाती। क्यों? क्योंकि उसकी दोनों टाँगें पोलियो की अकड़बंदी में कैद हैं। एक दिन असीम उत्साह से भरी सारंधा माँ के गले से लिपट गई, बोली "माँ! जानती हो, अब मैं पूरी दुनिया की सैर कर सकती हूँ।" माँ ने सजल नेत्रों से सारंधा की टाँगों की तरफ़ देखा। वह भरे गले से बोली, "क्यों यहाँ पंख लग गए हैं क्या?" सारंधा छलकते उत्साह से बोली, "अरे माँ मैंने 'पढ़ना' सीख लिया है"। "पढ़ना" क्या है ये "पढ़ना"? रहस्य, रोमाँच और अजूबे करिश्मों से भरी दुनिया की सैर कराता है 'पढ़ना'। पुरखों ने अपने अनुभवों से जो तरह-तरह के ज्ञान की दुनिया रचाई-बसाई, उसमें प्रवेश कराता है 'पढ़ना'। कुदरत ने जो चारों तरफ इंद्र धनुषी सौंदर्य बिखेरा है, कहीं बर्फ़ से ढँकी पर्वतीय चट्टानें तो कहीं धूल समेटे वीरान मरूस्थल इन सबकी सैर कराता है 'पढ़ना'। सुख-दुख, प्यार-घृणा, मिलन-विद्रोह, लेन-देन, आदर-अनादर तरह-तरह की रंगतों से घिरे मनुष्यों की ज़िंदगी को जानने-पहचानने के मौके देता है 'पढ़ना'।

क्षितिज के इस पार और उस पार क्या है, बस समझ लीजिए कि पूरी दुनिया को समझना है 'पढ़ना'।

पर हमारे विद्यालयों में जिस तरह से पढ़ने और पढ़ाने की कवायदें हो रही हैं, क्या वे हमें और हमारे विद्यार्थियों को पठन के वास्तविक संदर्भों तक पहुँचा पा रही हैं? समूचे शिक्षा जगत के लिए यह सब बहुत ही गंभीर और महत्वपूर्ण सवाल है। आम तौर पर प्राथमिक स्तर पर 'पढ़ना' सीखने-सिखाने को बहुत ही हल्के में ले लिया जाता है, उसके लिए न तो किसी तरह के गहन विमर्श की ज़रूरत समझी जाती है और अध्यापकों में न ही किसी प्रकार का गहन चिंतन, उत्साह एवं उमंग। विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर पढ़ रहे बच्चों से अकसर मिलना होता है। इन मुलाकातों में अकसर ऐसे प्रसंग उठते हैं जब उनसे सवाल पूछने का मौका मिलता है कि वे स्कूल क्यों आते हैं? अमूमन सभी बच्चों का एक ही उत्तर होता है कि वे विद्यालय आते हैं पढ़ने के लिए। इस क्रम में अगला सवाल होता है कि वे पढ़ना क्यों चाहते हैं तो उनके उत्तर इस प्रकार के होते हैं कि –

- बड़े होकर हम कुछ बन सकें।

* *वरिष्ठ प्रवक्ता*, मंडलीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर. के. पुरम्, नयी दिल्ली

- पढ़-लिख कर हमें अच्छी सी कोई नौकरियाँ मिल जाबेगी।
- माँ-पिता कहते हैं कि पढ़ना सीखे बगैर इंसान की कोई गत नहीं।
- पड़ोस के बाकी बच्चे पढ़ने के लिए आते हैं इसलिए हम भी आ जाते है कि हम भी पढ़ना सीख लें।
- घर में सभी बड़े कहते हैं कि पढ़ना-लिखना बड़े काम की चीज़ है, पढ़ लो- पढ़ लो।
- पढ़ना-सीखना इसलिए करते हैं कि बड़े होकर कोई-सा रोज़गार करने में आसानी होगी।
- पढ़े-लिखे की शादी में मुश्किल नहीं होती।
- पढ़ना-लिखना सीखेंगे तभी तो बड़ी कक्षाओं में जाएँगे, नहीं तो फ़ेल हो जाएँगे।
- स्कूल का काम करने के लिए पढ़ना सीखना ज़रूरी है।
- बड़ों का कहना है कि पढ़ना-लिखना सीखने से तमीज़ आ जाती है। दो-चार लोगों के बीच में उठना-बैठना ठीक से हो जाता है।

ये सभी टिप्पणियाँ प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ रहे लड़के-लड़कियों की हैं। किसी भी टिप्पणी का मर्म हमें पढ़ना सीखने के वास्तविक अर्थों तक नहीं ले जाता।

आप सभी की भी यही राय होगी। ये सभी कथन कुछ इस तरह के भाव की ओर संकेत करते हैं कि इंसान के लिए औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की कुछ जमातों (यदि सौभाग्यशाली हुए तो लगभग सभी जमातों) को पार कर लेना ज़रूरी है। और इसके लिए 'पढ़ना' एक अनिवार्य उपकरण है। अगर 'पठन' के इस अर्थ के इर्द-गिर्द हमारा पढ़ना सीखना शुरू हुआ है तो यकीन मानिए हम 'पढ़ने' की रोमांचकारी दुनिया से कोसों दूर हैं। यह बात लिखते-लिखते अचानक मुझे मुँडका (पश्चिमी दिल्ली का शहरी ग्रामीण क्षेत्र) का वह ढाबा याद आ गया जहाँ मेज़ की सफ़ाई कर रहा आठ वर्षीय छोटू मेज़ पर रखी पुस्तक पर नज़रें गढ़ाए हुए था। ऐसा लग रहा था कि पुस्तक का एक-एक अक्षर अपनी आँखों में समा लेना चाहता हो। उसके होंठो से कुछ अस्फ़ुट से स्वर फूटे, "मैम जी इस कताब में कुछ लिखया हैगा। मैं जाननाँ चाहदाँ हूँ कि इन कितावाँ विच कि कुछ होंदा हैं। सुनयाँ है कि वड्डे-वड्डे कारनामे दे अजूवे छपै हौं दे हिन इनया पुस्तका विच।" क्या कहना है आपको इस चाहत के प्रति? यही कहेंगे न कि पठन सीखने का असली प्रकेश द्वार तो यही है।

पुस्तकों के ज़रिए जल-थल व्योम के तिलिस्म का मज़ा लेना, ज्ञान की अचरज़ भरी दुनिया की थाह लेना, साहित्य के समृद्ध खजाने में गोता लगाने का बेलौस मज़ा लूटना, अजनबी टापुओं की सैर कर आना, ख्वाबों-ख्यालों की अनंत श्रृंखलाओं से जुड़ने का जतन करना, दूसरों की स्मृतियों की खुरदरी या रेशमी वीथियों से गुज़रना ये सब चाहतें 'पढ़ने' की दुनिया का सही अर्थों में संधान करती हैं। भावात्मक रागानुराग और आनंद से जुड़ी इन बातों को एक बार के लिए भूल भी जाएँ तो यह बात तो सत्य है कि स्कूल में हो रहे सभी क्रियाकलापों, गतिविधियों में से सबसे ज़्यादा महत्त्व रखने वाला है पढ़ना सीखना और पढ़ना सिखाना। ज़ाहिर है कि इस पढ़ना सीखना-सिखाना पर गौर करना, उस प्रक्रिया की बारीकियों, उलझनों को समझना बेहद ज़रूरी है। यह ज़रूरत इस बात को

मद्देनजर रखते हुए और तीव्र हो जाती है कि 'पढ़ पाने' में असफ़ल बच्चों की संख्या सफ़ल बच्चों से भी ज़्यादा है। किसी बच्चे का 'न पढ़ पाना' चौंकाने वाली घटना नहीं है। किसी बच्चे का पढ़ पाना, पर पढ़े हुए को समझना एक आम घटना है, जो हममें से कई एक अध्यापक अविकसित कौशल मान कर नज़रअंदाज़ कर देते हैं।

पढ़ना एक ऐसा कौशल है जो प्रिंट-समृद्ध समाज में किसी भी व्यक्ति को सशक्त और सुरक्षित महसूस करवाता है। पढ़ना 'पढ़ाई' का एक ऐसा ज़रिया भी है, जो पढ़ाई के बरकरार रहने की गारंटी है। आखिर 'पढ़ना' ही तो सभी विषयों को समझने की सीढ़ी है।

एक सरसरी नज़र दौड़ाने पर हम जान सकते हैं कि पढ़ना सिखाने के बहुत से 'तरीके' इस्तेमाल होते हैं। तरह-तरह के कार्ड, चार्ट व खेल इस्तेमाल करने का आजकल रिवाज़ सा है। प्रचलित अवधारणा यह भी है कि इससे बच्चों की पढ़ने में रुचि बढ़ती है। पारंपरिक रूप से ध्वनि, अक्षर, पहचान, शुद्ध उच्चारण जैसे यांत्रिक कौशलों को पढ़ने के कौशल की रीढ़ जाना जाता रहा है। हमारे स्कूलों में नए दिखने वाले पढ़ना सिखाने के तरीके असल में केवल सतही रूप से नए हैं। इन सभी तरीकों, पद्धतियों की नींव पढ़ने के उस ही यांत्रिक पक्ष में है, जो पारंपरिक तरीकों में है।

पिछले कुछ दशकों में हुए शोध-कार्य और पढ़ने के कौशल व प्रक्रिया को समझने के कुछ क्रांतिकारी विचार 'पढ़ने' को संपूर्ण व समग्र नज़रिया देते हैं। परहेज़ परंपरा से नहीं है। दिक्कत यह है कि पारंपरिक नज़रिया पढ़ने की एक सीमित और संकीर्ण समझ देता है। पढ़ना केवल ध्वनि और अक्षर पहचान का खेल रह जाता है जिसमें पढ़ने की समझ-भाषा और दुनिया-दोनों की, उसके अनुभवों, अहसासों, उसके परिप्रेक्ष्य की जगह नहीं है। अपनी बात का सिलसिला अब पठन के अर्थ और तौर-तरीकों की तरफ़ ले चलते हैं। पढ़ना एक जटिल कौशल है। इसमें बहुत से उप-कौशल निहित हैं। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उन सब उप-कौशलों को जमा करने से पढ़ने का कौशल उत्पन्न होगा। इसका कारण यह है कि यह यांत्रिक कौशल नहीं है और इसमें पढ़ने वालों की भीगीदारी महत्वपूर्ण है। इस भीगीदारी को आप अनुमान लगाना भी कह सकते हैं। लिखे हुए से अर्थ ग्रहण करने की अपनी एक प्रक्रिया है, जिसे भाषा शिक्षण के संदर्भ में समझना बहुत ज़रूरी है।

जब बच्चे विद्यालय में प्रवेश लेते हैं, उनके पास अपनी समझ और मौखिक भाषा का एक समृद्ध खजाना होता है। यहाँ यह कहना भी आवश्यक होगा कि बहुत से बच्चों के पास मौखिक भाषा के साथ-साथ पठन व लेखन का भी अनुभव होता है। मौखिक भाषा एक द्रव्य प्रतीक तंत्र है। हम अपनी जन्मजात भाषिक क्षमता के रहते अपने चारों तरफ़ गूँज रही ध्वनियों में से कुछ ध्वनियाँ अपनी ज़रूरत के अनुसार ले लेते हैं। तो क्या यह समझा जाए कि लिखित भाषा 'दृश्य प्रतीक तंत्र' है? ऐसा कहना-समझना ठीक नहीं क्योंकि 'दृश्य प्रतीक तंत्र' कह देने से लगता है कि हम दृश्य प्रतीकों यानी कि अक्षर आकृतियों से सीधे-सीधे अर्थ की ओर पहुँच पा रहे हैं। जबकि ऐसा नहीं होता। हम जब भी किसी लिखे या छपे शब्द वाक्यों को पढ़ते हैं तो उस आकृति को एकदम देखकर अर्थ ग्रहण नहीं कर पाते हैं। आपने देखा होगा कि बच्चे अपने

सामने पुस्तक रखकर पूरा का पूरा पाठ बाँच लेते हैं पर जब उनसे किसी शब्द विशेष पर हाथ रखने के लिए कहा जाए तो वे उस शब्द को 'पढ़' नहीं पाते। या फिर आप उस बाँची गई सामग्री का भाव समझाने की बात करते हैं तो भी स्थिति नकारात्मक ही होती है। पर फिर भी कहा यही जाता है कि बच्चे पढ़ लेते हैं। किसी भी पाठ-लिखि मुद्रित सामग्री को इस तरह से पढ़ लेने के संदर्भ में आपकी समझ क्या कहती है? आपके सामने एक वाक्य लिखा है –

सदड़-जणम गसि डाप जे शिमको

परड़ टयि नाध शरटा खाम।

आपने स्पष्ट उच्चारण के साथ इस समूचे वाक्य को पढ़ा। क्या आप इस वाक्य में निहित अर्थ को भी बता पाएगें? यदि आप इस वाक्य के भाव को नहीं समझ पाएँ तो बात एकदम स्पष्ट है कि आप वाक्य 'पढ़' भी नहीं पाए क्योंकि 'पढ़ने' का अर्थ है "लिखित या मुद्रित सामग्री से अर्थ ग्रहण करना।" अर्थात् पढ़ने के साथ-साथ 'समझना' हमेशा शामिल है। लिखे हुए से अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया को ही 'पढ़ना' कहेंगे।

'पढ़ने' का अर्थ है लिखे हुए से धारणाओं को गढ़ना और साथ ही विचारों को आपस में जोड़ पाना और उन्हें अपनी स्मृति में रखना। 'पढ़ना' सिर्फ़ वर्णमाला की पहचान, शब्द तथा वाक्य को बोल भर पाना नहीं है, बल्कि इसके आगे बहुत कुछ और भी है। यानी कि लिखे हुए के अर्थ को समझकर अपना नज़रिया बनाना या फिर अपनी निजी समझ विकसित करना है।

क्या किसी भी पठन सामग्री को 'पढ़ना'समझ के बगैर संभव है? 'पढ़ना' तभी हो पाता है जब हम पढ़े हुए को समझ पाएँ और अपने अर्थ आरोपित कर पाएँ। बहुत से प्रयोगों के आधार पर भाषा वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अक्षर पहचानने और पढ़ने में ज़मीन-आसमान का अंतर है। दरअसल पढ़ने का मतलब अक्षरों से जुड़ी ध्वनियाँ पैदा करना न होकर लिखी हुई चीज़ का अर्थ निकालना है। पढ़ने को हम जब इस व्यापक अर्थ में लेते हैं तो स्पष्ट है कि कई बच्चे जो शब्दों का सही-सही उच्चारण कर भी लेते हों, पर ज़रूरी नहीं कि वे सही अर्थो में पढ़ भी पाते हों। अकसर हम कहते हैं कि अमुक बच्ची पढ़ तो लेती है पर समझ नहीं पाती। इससे ऐसा लगता है कि पढ़ना और समझना दो अलग-अलग चीज़ें हैं जबकि पढ़ने की व्यापक परिभाषा यह कहती 'पढ़ने' के साथ 'समझना' जुड़ा हुआ है। समझ बनाना ही पढ़ने का उद्देश्य है। इसलिए बिना समझ के पढ़ना वास्तव में 'पढ़ना' नहीं कहलाएगा। पढ़ने के अर्थ से जुड़ी इस परिभाषा के आधार पर पढ़ना सीखने के लिए ज़रूरी है –

- भाषा लिपि (अक्षर ध्वनि) से परिचय
- भाषा-बोली से परिचय
- भाषा की वाक्य संरचना और शैली से परिचय
- विषय से परिचय।

पढ़ी जा रही भाषा को पढ़ने से पहले हमें उस भाषा को जानना और समझना होगा। इसके अभाव में पढ़ना संभव ही नहीं है। बोली जाने वाली भाषा ही लिपिबद्ध होती है और यदि हम बोली गई भाषा ही नहीं जानते तो लिखी गई बात पढ़ ही नहीं सकते।

हर भाषा एक विशेष संरचना में बंधी होती है चाहे वह शब्दों के स्तर पर हो, ध्वनियों के या वाक्यों के।

भाषा की वाक्य संरचना एवं विन्यास पढ़ने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त पूर्व अनुभव एवं पूर्व ज्ञान भी पढ़ने के समय अर्थ निर्मित करने में मदद करते है। पूर्व अनुभव या पूर्व ज्ञान का अर्थ है व्यक्ति के पहले के सभी अनुभवों से बनी अवधारणाएँ, जो हमारे मस्तिष्क में संचित होती जाती हैं और स्थिति विशेष के अनुसार हमें किसी के भी प्रति अपनी समझ बनाने में मदद करती हैं।

वास्तव में हम पढ़ने से पहले अक्षराकृतियों की ध्वनियों के रूप में व्याख्या करते हैं और फिर ध्वनियों की सार्थक व्याख्या करते हैं। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि लिखित प्रतीक चिह्नों (अक्षरों/शब्दों) से सीधे अर्थ तक पहुँचाया जा सकता है, पर यह स्थिति बहुत अभ्यास के बाद आती है। होता यह है कि सक्षम पाठक ने पठन की दक्षता में इस स्तर को प्राप्त कर लिया है जहाँ बीच के चरण को अनदेखा किया जा सकता है पर शुरुआती दौर में मूक पठन की संभावना बहुत ही कम रहती है। एक अध्यापक होने के नाते हमें हर स्थिति में यह बात ध्यान में रखनी होगी कि वाचन को पढ़ने का पर्याय नहीं मान लेना चाहिए। पूर्व प्राथमिक कक्षाओं में उच्चारण की शुद्धता और स्पष्टता को ध्यान में रखते हुए अक्षरों का ज़ोर-ज़ोर से वाचन करवाया जाता है और मान लिया जाता है विद्यार्थी पढ़ना सीख रहे हैं। यह प्रक्रिया पढ़ना सिखाने के कौशल को बहुत ही यांत्रिक और अर्थहीन बना देती है कि पठन जैसे रोमांचकारी अनुभव भी बहुत उबाऊ और थकावट से बोझिल हो जाते हैं। अपने भाषा शिक्षण के सत्रों में हमें इस बात का विशेष ध्यान देना होगा और सार्थक पठन सामग्री से पढ़ना सिखाने के तरीकों को अपनाना होगा जिसमें बच्चों को अनुमान लगाने व पठन को संदर्भ से जोड़कर देखने की पूरी-पूरी आज़ादी दी जाए,जो स्वत: पठन प्रक्रिया में शामिल ही है।

'पढ़ना' वही है जहाँ अर्थ ग्रहण की संभावना है इस बात को दोहराते हुए एक उदाहरण प्रस्तुत है – "वह तेज़ धूप में भागती हुई घर गई ।" इस वाक्य को एक विद्यार्थी प्रवाह के साथ पढ़ रही है और प्रवाह में वह पढ़ जाती है, "वह तेज़ धूप में भागती हुई मर गई।" फ़िलहाल उस विद्यार्थी को अभी अपनी गलती पकड़ में नहीं आएगी। अब वह दूसरा वाक्य पढ़ती है, "थोड़ी देर सुस्ताकर उसने एक गिलास ठंडा पानी पिया।" अब यदि उस विद्यार्थी ने यदि पहले वाक्य से अर्थ ग्रहण किया होगा तो उसे तुरंत अपनी गलती समझ में आ जाएगी और वह पलट कर पहले वाक्य पर स्वत: आ जाएगी पर यदि उसने पहले वाक्य को मात्र उच्चारित किया होगा और अर्थ भाव ग्रहण नहीं किया होगा तो आगे के वाक्यों को भी प्रवाह के साथ उच्चारित करती जाएगी जिसे 'पढ़ना'नहीं कहा जा सकता।

अब हमारे लिए महत्वपूर्ण बात क्या है?

हमें चाहिए कि हम 'पढ़ना' सिखाने में बाधक तत्त्वों की पहचान करें, जैसे पढ़ना सिखाने के यांत्रिक कौशल, अर्थहीन पठन सामग्री, मुद्रण समृद्ध परिवेश की कमी और हममें से कुछ अध्यापकों का यह नज़रिया कि सभी बच्चे विशेषकर जिनके घरों में पहले कभी पढ़ाई-लिखाई की बात नहीं हुई वे पढ़ना सीख ही नहीं सकते। इन बाधक तत्त्वों की पहचान करना ही काफ़ी नहीं है, उन्हें दूर करना भी ज़रूरी होगा और उसके लिए तो सर्वप्रथम अध्यापक को

स्वयं एक उत्सुक एवं जिज्ञासु पाठक की छवि के रूप मे सामने आना होगा। कक्षा में 'पठन कोना' जैसी अवधारणा को विकसित करना होगा। तरह-तरह की पत्र-पत्रिकाएँ व बालोपयोगी साहित्य मँगवा कर मुद्रण समृद्ध परिवेश रचना होगा।

मुद्रण समृद्ध परिवेश की बात जब आती है तो बहुत से अध्यापक अचकचा जाते हैं। वे कहते हैं कि हमारे पास तमाम पुस्तकें खरीदने का पैसा कहाँ है, जो विद्यालय में मुद्रण समृद्ध परिवेश रच डालें। या फिर वे विद्यालय में बरामदों व कमरों में लिखी सूक्तियों की ओर संकेत करते हैं कि "देखिए न कितना कुछ तो लिखा है। बच्चे देखते तक नहीं है इधर।" अब मैं यहाँ दो बातें कहना चाहूँगी पहली तो यह कि मुद्रण/लिखित समृद्ध परिवेश रचने के लिए 'फंड' की आवश्यकता नहीं। आपके पास पुराने कैलेंडर या चार्ट पेपर होंगे या इसी तरह का कुछ प्रबंध आप कर सकते हैं। उन पर "आज की बात", 'कक्षा में नामांकित बच्चों के नाम', 'मध्यान्ह भोजन में मिलने वाले भोज्य पदार्थो के नाम, आस-पास के परिवेश में दिख रही वनस्पति के नाम और भी न जाने क्या-क्या लिख कर लिखित मुद्रण समृद्ध परिवेश रचा जा सकता है। अब और अधिक सुझाव देकर अध्यापकों की क्षमताओं पर किसी तरह का संदेह नहीं कर रही, बस यह कहते हुए लेख समाप्त करती हूँ कि पढ़ना सीखने-सिखाने के तरीकों पर पुन: गौर करें, सवाल करें कि क्या से तरीके पठन की दुनिया में हमें ले जा पर रहें हैं या नहीं।

❑❑❑